है। अमेरिका में इसका दुष्परिणाम दिखाई नहीं पड़ता है। कारण, वहां कुल आबादी के मुश्किल से चार-पांच प्रतिशत ही लोग कृषि-कार्य में संलग्न हैं। किन्तु भारत में कुल आबादी की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर करती है। परिणामस्वरूप, कृषि का औद्योगीकरण भारत के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहा है।

पश्चिम के सम्पन्न देशों ने औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी है। वे उसी आधार पर अधिकाधिक समृद्ध हो रहे हैं। उन्होंने कृषि-कार्य को भी औद्योगिक प्रक्रिया माना था। इस कारण, उन्हें कृषि-कार्य की विशेषता समझ में नहीं आई थी।

अपने देश में कृषि-कार्य आदि काल से होता आया है। दीर्घ काल के अनुभवों के फलस्वरूप हमारी कृषि-पद्धति प्राकृतिक आधार पर विकसित हुई थी।

कृषि-उपज का विकास जैविक प्रक्रिया है। उसका रासायनिक विश्लेषण तो किया जा सकता है, किन्तु रासायनिक आधार पर कृषि-कार्य करना अप्राकृतिक है। इस तथ्य को पश्चिमी वैज्ञानिक समझ नहीं पाए थे।

कृषि-कार्य रासायनिक आधार पर करने के निम्न दुष्परिणाम अब उजागर हो रहे हैं:-

1. यह पद्धति लोकतंत्र के प्रतिकूल और पूंजीपतियों के अनुकूल है।
2. इससे किसानों का स्वावलंबन समाप्त होता है और उन्हें पूंजीपतियों का हमेशा के लिए मुखापेक्षी बना रहना पड़ता है।
3. रासायनिक खाद कृषि-भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते नहीं, अपितु उर्वरा शक्ति का शोषण कर भूमि को कमजोर बना डालते है। फलस्वरूप, रासायनिक खादों की मात्रा प्रति फसल बढ़ानी पड़ती है। अंत में जमीन की उपजाऊ शक्ति नष्ट होती है।
4. रासायनिक खादों और कीटनाशकों के उपयोग के कारण कृषि-उपज में विषैले तत्वों का प्रवेश होता है, जो मानव के लिए अनेकानेक रोगों का कारण बनता है।
5. रासायनिक तत्वों का भूमि में ही नहीं, अपितु भूगर्भ-जल में भी प्रवेश होकर पेयजल प्रदूषित होता है।

उपर्युक्त दुष्परिणामों के फलस्वरूप उद्योग आधारित सम्पन्न देश अब अपनी कृषि-नीति बदलने के लिए मजबूर हुए हैं। उन देशों में जैविक कृषि-उपज को अधिक दाम देकर खरीदना प्रारंभ हुआ है। किन्तु आधुनिकता के नाम पर पश्चिमी देशों का अंधानुकरण करने वाले हमारे नेतागण अब असमंजस में पड़े हैं। किन्तु क्या वे बड़े-बड़े किसानों और पूंजीपतियों के प्रभाव से स्वयं को मुक्त करा पाएंगे?

भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व में अपनी अनोखी विशेषता रखती है। वह मानव में कृतज्ञता का भाव अंकुरित व पल्लवित करती है। फलस्वरूप, भारतीय परंपरा सभी उपकारक तत्वों को पूज्य मानती है। वह हिमालय को देवता, गंगा को गंगा-माता, भूमि को भूमाता और गाय को गो-माता के रूप में अनुभव करती है। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति प्रकृति का स्वार्थसिद्धि के लिए शोषण करना नहीं सिखाती। अपितु स्वयं को प्रकृति की संतान मानकर प्रकृति का शोषण नहीं - दोहन करती है, मानो बच्चा माँ का दूध पीकर स्वयं को बलवान बनाते हुए माँ को भी सुख पहुंचाता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार किसान की कृषि-भूमि के प्रति पूज्य भाव होने के कारण उसका व्यवहार कृषि-भूमि के प्रति संतानवत् रहता रहा है। कृषि-भूमि से प्राप्त धन-धान्य के कारण वह उसकी उर्वरा शक्ति सदा-सर्वदा कायम रखने के लिए जी-जान से जुटा रहता रहा है।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त उपभोग प्रवण लोग अपनी देशी गायों की महत्ता समझ नहीं पाए। वे गाय को एक दूध देने वाला प्राणी मात्र मानने लगे। ठंडे देशों की गायें अधिक दूध देती हैं। इस कारण, हमारे नेताओं का उन गायों के प्रति आकर्षण बढ़ा। उन्होंने होलस्टिन, स्विस ब्राउन और जर्सी नस्ल के विदेशी सांडों का वीर्य आयात कर अपने देशी गायों का कृत्रिम गर्भाधान करना प्रारंभ किया। वह अभियान व्यापक स्तर पर चलाया। इस कारण, अपने देश के गायों की मूल नस्ल मिलना कठिन हो गया है। उपर्युक्त अभियान के कारण अपने देश का कितना नुकसान हुआ, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

देशी गायें भारत की अर्थव्यवस्था की आधारशिला रही हैं। गाय और कृषि एक-दूसरे से अभिन्न हैं। गायों से मानव को दूध अवश्य मिलता है। किन्तु जैविक कृषि का मूल आधार गोवंश ही है। यह विशेषता हमारे आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों को ज्ञात नहीं है।

देशी गायों द्वारा प्राप्त बछड़े केवल जैविक कृषि-कार्य के आधार ही नहीं, अपितु यातायात में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है। व्यापक स्तर पर बने रेलमार्ग तथा रोडवेज के विशाल विस्तार के बावजूद देश का लगभग पचास प्रतिशत यातायात आज भी बैलों द्वारा ही होता है।

गोवंश खेती के सभी कार्य सम्पन्न करते हुए आवश्यक मात्रा में जैविक खाद भी उपलब्ध कराता है। उसके लिए किसान को अतिरिक्त धन खर्च करना नहीं पड़ता। किसानों को स्वावलंबी बनाने में गोवंश आधारभूत साधन है। खेती के उपकरण गांव के ही बढ़ई और लोहार बना देते रहे हैं। इस कारण, किसान को किसी का मुखापेक्षी बनना नहीं पड़ता था। इस प्रकार, किसान लोकतंत्र का सर्वप्रमुख आधार था।

देशी गायों का मूत्र (गोमूत्र) फसलों की बीमारियों का निराकरण करने में समर्थ है। यदि फसलों पर अधिक प्रबल कीटाणुओं का आक्रमण हुआ तो गोमूत्र में कड़वे नीम की पत्तियां दस दिन सड़ाने के बाद वह मिश्रण पानी में तीन प्रतिशत मिलाकर उसका छिड़काव किया तो घातक से घातक रोगों के कीटाणुओं का सफाया होता है। इसके अतिरिक्त फसलों पर बोने के एक माह बाद से फसल में फूल आने तक पानी में दो प्रतिशत शुद्ध गोमूत्र मिलाकर पंद्रह-बीस दिन में एक बार छिड़काव किया गया तो फसल का विकास अधिक गति से होता है, फसल अधिक सतेज और तगड़ी बनती है तथा अधिक उपज प्रदान करती है। ये सब प्रयोगसिद्ध तथ्य हैं। ये गुण देशी गायों के मूत्र में ही पाए जाते हैं।

विदेशी सांडों के वीर्य से संकरित गायों के बछड़े अपने देश की जलवायु में न खेती के काम आ पाते हैं, न यातायात के। पश्चिमी देशों में बछड़ों का माँस लोकप्रिय है। अपने देश में उसे अपनाना संभव नहीं है।